

यूनिट 2: भारत एक समाज के रूप में

संरचना

- 2.1. परिचय
- 2.2. उद्देश्य
- 2.3. प्राचीन भारत में समाज
 - 2.3.1. सिंधु घाटी सभ्यता
- 2.4. वैदिक सभ्यता
- 2.5. पोस्ट-वैदिक समाज और संस्कृति
- 2.6. इस्लामी परंपरा और संस्कृति
 - 2.6.1. भारतीय समाज पर इस्लाम का प्रभाव
 - 2.6.2. हिंदू और मुस्लिम संस्कृति का संश्लेषण
- 2.7. ब्रिटिश काल में समाज
 - 2.7.1. शहरीकरण और औद्योगीकरण
 - 2.7.2. संचार और परिवहन के साधनों का प्रभाव
- 2.8. भारत आज़ादी के बाद
 - 2.8.1. कानून के समक्ष समानता
 - 2.8.2. शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति
- 2.9. एक समाज के रूप में भारत: अर्थ और विशेषताएं
 - 2.9.1. स्थलाकृति और पर्यावरण
 - 2.9.2. आधुनिक भारत में एकता की ताकतें
 - 2.9.3. एकता के अभाव के कारक
- 2.10. भारतीय ग्रामीण संदर्भ
 - 2.10.1. जाति व्यवस्था
 - 2.10.2. ग्रामीण भारत में परिवार
- 2.11. निष्कर्ष
- 2.12. आग्र प्रतिबिंब के लिए प्रश्न
- 2.13. आपकी प्रगति की जांच के लिए उत्तर
- 2.14. संदर्भ और ग्रंथ सूची

2.1. परिचय

भारतीय समाज को विविध सामाजिक और सांस्कृतिक धाराओं के संगम का उदाहरण माना जाता है। यह कई संस्कृतियों विशेषतः आर्य व द्रविड़ संस्कृतियों के मिलन से बना है। यहां के गांवों, परिवारों व न्याय व्यवस्था को एक सूत्र में बांधने का काम इस सदियों से चली आ रही संश्लेषण प्रक्रिया का फल है। इसी के कारण हमारे प्राचीन से वर्तमान समय में एक निरंतरता दिखाई देती है, जो कि मोहनजोदड़ो (2500 ई. पूर्व) से प्रारंभ होकर जैन धर्म, बौद्ध धर्म तथा इस्लाम के प्रभुत्व काल से होती हुई अंग्रेजी राज व स्वतंत्रोत्तर भारत तक उपस्थित है। यही हमारे विविधतापूर्ण चित्रकला, संगीत धर्म आदि का कारण है।

के.एम. पणिक्कर ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए इसे विचारों, अवधारणाओं, विकसित गुणों, तथा संगठित संबंधों तथा शिष्टाचारों का एक भवन समूह बताया जो कि समाज में सामान्यतः देखने को मिलता है। उनके अनुसार यह 'एक विचारों का समुदाय, मूलभूत समस्याओं के प्रति एक समान धारणा है जिसका उदय समान परंपराओं और आदर्शों में सहभागिता से होता है। भारत की संस्कृति बाहरी संपर्क के कारण लगातार बदलती रही, परन्तु इसके मूल में सदा भारतीयता बनी रही जो कि स्वदेशी विचारों और सिद्धांतों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति का यह बाह्य रूप तथा सार हमें साहित्य, कला तथा स्थापत्य में देखने को मिलता है। भारत में धार्मिक तथा सामाजिक सहिष्णुता की परंपरा रही है। भारतीय जीवन के सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों की विविधता व संपन्नता के मूल में यही सहिष्णुता है।

2.2. उद्देश्य

भारत एक समाज के रूप में नामक यह इकाई/खण्ड आपको जिन महत्वपूर्ण पक्षों को समझने में सहायता करेगा वे हैं:

- प्राचीन भारतीय सभ्यता की संपन्नता व उस काल खण्ड की संस्थाएं
- प्राचीन भारतीय समाज का आधुनिक समाज में विकास
- भारतीय समाज को प्रभावित करने वाली संस्कृतियां
- भारतीय समाज की मुख्य संस्थाएं जैसे जाति व परिवार
- ग्रामीण भारत तथा इसके विभिन्न समाजशास्त्रीय आयाम

2.3. प्राचीन भारत में समाज

प्राचीन काल के मुख्य साहित्यिक स्रोत ग्रंथ संस्कृत तथा द्रविड़ भाषाओं में लिखे गए। वेद, पुराण, महाभारत तथा पाली व प्राकृत में उपलब्ध ग्रंथों में प्राचीन भारतीय समाज के कई संदर्भ मिलते हैं। कल्याण के चालुक्य, (छात्रमनस) छाप्रवंश व बंगाल के पाल आदि के बारे में मध्यकाल में लिखे गए ऐतिहासिक ग्रंथ भी संस्कृत में हैं। इन राजवंशों से संबंधित तीन प्रमुख कृतियां हैं क्रमशः विक्रमांकदेवचरित, पृथ्वीराज विजय व रामचरित।

प्रागैतिहासिक समय को तीन भागों में बांटा जाता है – पाषाण युग, ताम्र युग, व लौह युग। इतिहास का यह वर्गीकरण मनुष्यों के भौतिक व तकनीकी विकास को रेखांकित करता है। मानवों के आर्थिक, सामाजिक स्तर व उसके पर्यावरण के ज्ञान हेतु गहन अन्वेषण आवश्यक है। हाँलाकि यह काल विभाजन पर्याप्त समझ विकसित नहीं करता है। निम्नलिखित चरणों के माध्यम से मानव विकास की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है –

- i. प्राचीन भोजन संग्रहण काल या प्राचीन व मध्य पाषाण युग
- ii. प्रगत भोजन संग्रहण काल या उत्तर पाषाण युग

- iii. भोजन संग्रहण से उत्पादन में परिवर्तन या नियोलिथिक युग
- iv. स्थापित ग्राम्य समुदाय या प्रगत नियोलिथिक
- v. नगरीकरण या कांस्य युग

2.3.1. सिन्धु घाटी की सभ्यता

सिन्धु घाटी की सभ्यता नगर आधारित थी व इसका क्षेत्रफल नील घाटी तथा (टिगरिस दजला—फरात यूफरेटस) घाटी की सभ्यताओं से अधिक था। पूर्व से पश्चिम की ओर इसका फैलाव 1550 कि.मी. था तथा उत्तर से दक्षिण तक यह 1100 कि.मी. था। व्यवस्थित नगर नियोजन इस सभ्यता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष था। मार्ग, पथ, विथिकाएं व मकान समरूपता का सिद्धांत ध्यान में रखकर बनाए गए थे तथा इन्हें बनाने में भट्टी में पकी इंटों का प्रयोग हुआ था। सिन्धु घाटी में उत्खनन से प्राप्त वस्तु वहां एक संगठित नागरिक जीवन का संकेत देती है। उदाहरण के लिए पूर्णतः सुनियोजित नगर, पूर्णकालिक जल निकासी व्यवस्था, वजन तथा माप का मानकीकरण तथा लेखन शैली। कला व हस्तकौशल का विकास इस दौर में प्रारंभ हुआ। हालांकि अभी भी यहां लोग पुरातन काल में ही रह रहे थे। अथर्व वेद के रचना काल के समय तक आर्य धातुओं से भली भांति परिचित हो चुके थे वह लौह, कांस्य व ताम्र में अंतर जानते थे।

विशिष्ट रूप से यहां भवनों में एक केन्द्रीय प्रांगण, तीन से चार आवासीय कक्ष, एक स्नानागार तथा एक पाठशाला होती थी। बड़े भवनों में तो लगभग तीस कक्ष होते थे। दो मंजिला होते थे। अधिकांश घरों में एक कुंआ रहता था व भूमिगत जल निकासी व्यवस्था थी। मौर्य समाज तथा अन्य समकालीन क्षेत्रीय व स्थानीय संस्कृतियों के बारे में समुचित पुरातात्विक अभिलेख उपलब्ध है। लौह धातु का उपयोग पूरे भारत वर्ष में हो रहा था। संस्कृत भाषा के प्रसार ने संस्कृतियों के संविलय में योगदान दिया। पुरातात्विक व भाषाई साक्ष्य एक अखिल भारतीय संस्कृति के विकास का प्रमाण देते हैं। अपनी क्षेत्रीय पृथक्ता के कारण संपूर्ण उपमहाद्वीप अपनी अंतरआत्मा से भारतीय है। यह संयोजन उन समूहों के एक सहस्राब्दी लंबे परस्पर संघर्ष व मेलजोल का नतीजा है जो इस देश में आकर बसे। विदेशियों के संपर्क के कारण भाषाई संविलयन सर्वाधिक देखने को मिलता है। आर्यसंस्कृति का प्रभाव बढ़ने लगा व बिहार व बंगाल के कुछ भाग इससे प्रभावित हुए। विदेशी संस्कृतियों का भारतीयकरण भी साथ ही हो रहा था। आर्य संस्कृति के प्रभाव से तात्पर्य आर्यों या विदेशियों का मूल निवासियों पर प्रभाव व भारतीयकरण का अर्थ आर्यों 'द्वारा' मूलनिवासियों की जीवनशैली को आत्मसात करने की प्रक्रिया है। उपरोक्त दो प्रक्रियाओं ने आर्य व अनार्य संस्कृतियों के बीच पहले परस्पर सहअस्तित्व व तत्पश्चात् संयोजन का मार्ग प्रशस्त किया।

2.4. वैदिक सभ्यता

सिन्धु घाटी की संस्कृति व वैदिक सभ्यता में कई अंतर देखने को मिलते हैं। वैदिक आर्य मुख्यतः ग्रामीण थे दूसरी ओर सिन्धु घाटी की विशेषता उनके नगरीय जीवन की सुविधाएं थी। आर्यों को लौह तथा प्रतिरक्षा कवच आदि का ज्ञान था परन्तु सिन्धु घाटी में इसका आभाव था। वैदिक सभ्यता में अश्वों की भूमिका महत्वपूर्ण थी पर सिन्धु घाटी के आरंभ काल में इनका यहां अस्तित्व भी संशय के घेरे में है। धार्मिक मान्यताओं और कर्मकाण्डों में भी कुछ महत्वपूर्ण अंतर देखने को मिलते हैं।

वेद अकेले ऐसे साहित्यिक—धार्मिक ग्रंथ हैं जिनके माध्यम से भारत में आर्यों के बारे में जानकारी मिलती है। ऋग वेद संहिता आर्यों का प्राचीनतम ग्रंथ है। वैदिक समाज ग्राम्य व कृषि प्रधान था। कई सामाजिक—सांस्कृतिक व शैक्षणिक गतिविधियों के लिए मंदिर व विद्यालय आधार संस्थान बनकर उभरे। ग्राम स्वशासी इकाई हुआ करते थे। चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व में मेगस्थनीज़ ने सात जातियों का वर्णन

किया। उन्होंने लिखा है कि अंतर्जातीय विवाह बहुत सामान्य बात थी। मद्यपान, धूतक्रीड़ा व देह व्यापार जैसे वसनों पर राज्य का नियंत्रण होता था।

वैदिक काल में स्त्रियों के लिए ज्ञान के सभी द्वारा खुले हुए थे। वे वैदिक ऋचाओं की रचना में भी संलग्न थी। गार्गी व मैत्रेयी उपनिषद् काल की प्रमुख दार्शनिक थी। उच्च कुल की महिलाएँ यज्ञ में अपने पति का साथ देती थी। उनका संपत्ति पर अधिकार होता था व विधवा विवाह की अनुमति थी पर स्त्रियों को एक पुरुष से ही विवाह की अनुमति थी। हालांकि, बौद्ध काल में स्त्रियों को वेद पाठ के अधिकार से विमुक्त कर दिया गया। गुप्त काल के दौरान परिस्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। स्वयंवर व गंधर्व विवाह का चलन कम हुआ, अर्श व असुर विवाह का प्रचलन बढ़ा। महिलाओं को संपत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया व विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गई। सती व पर्दा प्रथा का उदय हुआ।

2.5. उत्तर वैदिक समाज व संस्कृति

इस्वी काल की प्रारंभिक शताब्दियों में विदेशी आक्रान्ताओं का भारतीय राजवंशों से मेलजोल बढ़ा जो उनके प्रभाव क्षेत्र में आए। विदेशी राजवंशों की राजधानियाँ सांस्कृतिक संयोजन का केन्द्र बनी जिसने भारतीय सभ्यता को एक विशिष्ट वैश्विक चित्र प्रदान किया। पौराणिक हिन्दु धर्म का उदय गुप्त काल में हुआ। बुद्ध को विष्णु के एक अवतार के रूप में स्वीकार कर लिया गया। ब्राह्मणवाद व बौद्ध धर्म में आपसी समझौता हो गया। हिन्दु धर्म, जनजातीय आस्था व कर्मकांड तथा विदेशी धार्मिक प्रतीकों के बीच दूरी कम हुई। हिन्दु समाज एक सांस्कृतिक व सामाजिक समूहों का संघ बन गया। जहाँ उनमुक्त विचारों व परंपराओं का विनिमय तथा सुखद पड़ोसी संबंधों के साथ रहना संभव था।

फहियान के अनुसार पांचवी शताब्दी इस्वी में गुप्त काल में उत्तर भारत में चहुँओर समृद्धि व्याप्त थी। वणिक् वर्ग अकूट धनसंपदा अर्जित कर रहा था। व्यापारिक तथा वाणिज्यिक गतिविधियाँ अपने चरम पर थी। धनी जन विद्यालय, मठ, मंदिर व चिकित्सालय बनाने के लिए मुक्त हस्तददान किया करते थे। पाटलीपुत्र का बौद्ध विहार शिक्षण का महत्वपूर्ण केन्द्र था। जनता शगुन व ज्योतिष में विश्वास करती थी। सामाजिक उत्सवों तथा त्यौहारों पर संगीत, नृत्य व प्रीतिभोज आम बात थी। बसन्तोत्सव हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता था।

समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्यपूर्ण कार्यसंबंधों के मूल में नैतिक आचरण विधि के स्थान पर धर्म आधारित होता था। स्मृतियों के धर्मशास्त्र में सभी जाति व रोज़गार संबंधी नियम थे जो सभी संबंधों को संचालित करते थे जैसे – राजा और प्रजा, पति और पत्नी, छात्र और शिक्षक। यह नियम जड़ नहीं थे व समय-समय पर इनका पुनर्निर्धारण व पुरोहित वर्ग अपने मतानुसार कुछ अवक्षेप व निबंध लागू कर दिया करते थे। हिन्दू समाज जातियों तथा उपजातियों में विभक्त था। सामाजिक मेलजोल तथा विवाह संबंधी नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता था। खेलकूद, उत्सव व अनशन आदि संस्कार सामान्यतः होते रहते थे। नृशंस जाति नियमों के कारण समाज का पतन प्रारंभ हुआ। निम्न कुल व बहिष्कृत व्यक्तियों को अपमानित किया जाने लगा। महिलाओं को दबाया गया। इस समय ही गण, श्रेणी व संघ जैसे निगमित निकायों का भी विघटन शुरू हो गया। जाति व्यवस्था के साथ सामाजिक दर्जा, आर्थिक दर्जे से अधिक महत्वपूर्ण हो गया। श्रम का गौरव आत्मसम्मान का प्रतीक नहीं रह गया। समाज में अत्याधिक वर्गीकरण हो गया। ऋण न चुकाए जाने पर बंधुआ मजदूरी एक सामान्य बात बन गई। इन बंधुआ मजदूरों को दास कहा जाता था। जाति बहिष्कृत व्यक्ति इनसे भी नीचे होते थे। इन्हे चान्डाल, पुलकास व निषाद कहा जाता था। जाति बहिष्कृत लोगों को उच्चजातियों से अलग रखा जाता था। दक्षिण भारत में उत्तर की ही तरह जाति व्यवस्था तथा दासप्रथा अस्तित्व में थी।

2.5.1. वर्ण व्यवस्था

ऐसा कहना एक मिथक ही तरह होगा कि प्रागैतिहासिक समाज समानता और धर्मिकता में परिपूर्ण एक जाति रहित सहत्राब्धि था। समाज में आर्यों व अनार्यों का भेद ऋग्वेद में वर्णित सामाजिक वर्गीकरण का पहला साक्ष्य है। आर्य समाज की कृषि, पशु-पालन व व्यापार पर आधारित कार्यों के विभाजन के कारण चार समूहों में विभक्त था। वे लोग जो वाणिज्य और व्यापार संबंधी गतिविधियों में लगे होते थे, वैश्य कहलाते थे। अधिशेष संपदा क्षत्रियों व ब्राह्मणों के निर्वहन हेतु प्रयोग की जाती थी। ये तीन वर्ण अपने चर्म के रंग से नहीं अपितु अपने कार्य व्यापार से जाने जाते थे। ब्राह्मणों का कार्य धार्मिक गतिविधियां व कर्मकाण्ड करना था। वेद पाठ करना तथा समाज के सभी वर्गों के लिए धर्म तथा व्यावहारिक प्रतिमान स्थापित करना उनका कार्य था। क्षत्रियों को देश की रक्षा तथा कानून व्यवस्था बनाए रखने का उत्तरदायित्व था। समय के साथ ये वर्ण अपने कार्यों में दक्ष होते गए व इन्होंने सामाजिक सोपान निर्धारित कर लिए जिसमें ब्राम्हण सबसे ऊपर, क्षत्रिय उनसे नीचे व वैश्य तीसरे क्रम पर स्थापित हो गए। चौथा स्थान शूद्रों या दासों का था जिनका कार्य अन्य तीन वर्णों की सेवा करना था। ऋग्वेद के पुरुष सुक्त में वर्णों के उद्भव की एक दंत कथा वर्णित है – जंघ से वैश्व तथा चरणों से शूद्र।

वर्ण जाति से भिन्न समूह है। वर्ण हिन्दू समाज में व्यापक विभाजन का घटक है, वहीं जाति समूहों से तात्पर्य जिसे विशिष्ट अंतर्विवाही समूहों से है जिनकी संख्या तीन हजार से अधिक है। वर्ण एक अखिल भारतीय सामान्य लक्षण है जबकि जातियां स्थानीय समूह है। विभिन्न जाति समूह जो केरल व तमिलनाडु में पाए जाते हैं वे गुजरात व राजस्थान में नहीं मिलते। विवाह संबंध परस्पर एक स्थानीय क्षेत्र में रह रहे जाति समूहों के सदस्यों के बीच बनते हैं क्योंकि दूर रह रहे लोगों के पूर्वजीवन के बारे में लोग जानते नहीं थे। प्रारंभिक काल में वर्णों के व्यवसाय वंशानुगत नहीं थे। न केवल व्यवसाय में परिवर्तन की अनुमति थी अपितु यदि व्यक्ति के पास गुण तथा योग्यता हो तो अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार करना भी संभव था। उच्च कुल से निम्न वर्ण में अवतरती भी सामान्य बात थी। तत्पश्चात् स्मृतियों के अनुसार जाति तथा व्यवसाय स्थायी व वंशानुगत बन गए। सामाजिक व आर्थिक गतिविधियों का विभाजन सामाजिक उपकरण का एक भाग, एक मानक बन गए। व्यक्तिगत उद्यम के उदय के साथ ही निजी संपत्ति की धारणा का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार जाति व संपत्ति ने 'राज्य' के उदय को अवश्यभावी बना दिया।

क्षत्रीय तथा वैश्य समुदाय पर वर्ण व्यवस्था का वंशानुगत ढांचा कठोरता से लागू नहीं किया गया। राजनीति तथा सैन्यकर्म किसी एक समूह तक सीमित नहीं रखे गए। भारतीय इतिहास में कई ब्राम्हण, वैश्य व शूद्र राजघरानों का वर्णन मिलता है। सत्त्वाहन ब्राम्हण थे, गुप्त वैश्य थे व नंद शूद्र थे। पवन, शक तथा कुषाण भी राजपरिवारों में शामिल थे जो किसी जाति के नहीं थे।

अपनी प्रगति परखे – 1

1. वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति पर संक्षिप्त टिप्पणी करें –

.....

.....

.....

.....

.....

2.6. इस्लाम की इस्लामिक परंपरा तथा संस्कृति

हिन्दू परंपरा के विपरीत, इस्लाम की परंपरा का आधार प्रत्यक्ष रूप से गैर श्रेणी बद्ध व एकेश्वरवाद है। सैद्धान्तिक तौर पर इस्लाम में कोई पुरोहित नहीं है। यह मुस्लिम उम्मा (श्रद्धालुओं के समूह) की एकता पर आधारित है। कुरान (पवित्र ग्रंथ) तथा विभिन्न इस्लाम की विभिन्न परंपराओं ने इसकी पवित्रता व सामूहिकता बनाने में अपना योगदान दिया है। इस प्रकार, सैद्धान्तिक रूप से, इस्लाम में समानता व समतावाद के तत्व समाहित हैं। आरंभिक काल में इस्लाम का कबिलाई लोगों में प्रसार हुआ। हालांकि बाद में यह जटिल होता गया। कबिलाई ने यह कृषि प्रधान व व्यवसाय प्रधान बन गया। भारत में मुसलमान दूसरा सबसे बड़ा समुदाय है। हिन्दू व मुस्लिम यहां पिछले लगभग एक हजार साल से साथ में रह रहे हैं। ये दोनों दो भिन्न संस्कृति, वैश्विक दृष्टिकोण तथा जीवन पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस्लामी तथा हिन्दु परंपराओं ने परस्पर आपस में एक-दूसरे को प्रभावित किया, इनसे संश्लेषण हुआ तथा इन्होंने आपस में दूरी भी बनाकर रखी। वाय सिंह ने भारत में इस्लामी परंपराओं को तीन चरणों में बांटा है। वे इस प्रकार हैं –

(i) भारत में इस्लामी राज का कालखंड, (ii) अंग्रेजी प्रभुत्व काल तथा (iii) भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन तथा स्वतंत्रता प्राप्ति व विभाजन काल। पहले चरण में हिन्दू तथा मुस्लिम परंपराओं में विरोध, तनाव, अनुकूलन तथा सांस्कृतिक विलय की प्रमुखता रही। मुस्लिम शासकों ने उलेमाओं की सहायता से धार्मिक युद्ध (जिहाद) छेड़ दिया। तनाव के बाद भी दोनों परंपराओं ने अपना कबिलाई समतावादी चरित्र फारसी समाज के प्रभाव में बदल लिया। इस समय तक इस्लाम के सामाजिक ढांचे में हैसियत तथा सम्मान के आधार पर विशिष्टता नज़र आने लगी।

मुस्लिम समाज भी पुरोहित, अभिजात्य वर्ग तथा अन्य वर्गों में विभाजित हो गया। बाहरवी शताब्दी इसवी में इनमें भी वंशानुगत उत्तराधिकार मौजूद था। अभिजात्य वर्ग में उच्च कुल के विदेशी मूल के (गैर परिवर्तित विदेशी) कुछ लोग शामिल थे। मुसलमानों (अशरफो) के चार दर्जे थे – सैय्यद, शेख, मुगल तथा पठान। सैय्यद तथा शेख अभिजात्य वर्ग से थे व उच्च धार्मिक पदों पर आसीन थे। मुगल व पठान योद्धा, सामंत तथा शासक थे। ये समूह बाद में जातिगत ढांचे की तरह विकसित हुए तथा इस्लामी परंपराओं के संरक्षक बनें।

2.6. इस्लाम का भारतीय समाज पर प्रभाव

इस्लाम के आगमन से पूर्व तथा हर्ष के शासन के बाद भारत ने राजनैतिक विखण्डन तथा बौद्धिक अवरोध का एक कठिन दौर देखा। देश कई सारे छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। लोगों ने अपनी पहचान व अपने नज़रिये का दायरा बहुत छोटा कर लिया था। शैव तथा वैष्णव दो भिन्न धार्मिक दलों के रूप में उभर रहे थे। उच्चकुलीन प्रबुद्ध वर्ग की ओर से धार्मिक कृतियों, विचारों व भाष्य आदि में कोई नवाचार नहीं दिख रहा था। शक, हूण तथा गुर्जरों ने गुप्त वंश के स्वर्ण काल का अंत कर दिया था। हालांकि इन विदेशियों ने धीरे-धीरे हिन्दू धर्म व संस्कृति स्वीकार कर ली। इन आक्राताओं ने स्वयं को क्षत्रियों का वंशज घोषित कर दिया। यह समय राजपूत संस्कृति, कला, साहित्य, काव्य तथा नाटक के उदय का काल है। इस प्रकार उत्तर भारत तुलनात्मक रूप से स्थिर दक्षिण भारत की अपेक्षा राजनैतिक विखंडन के दौर से गुजर रहा था।

अरब मुसलमानों का दक्षिण भारत के साथ व्यापारिक नाता भारत में इस्लाम के उदय से बहुत पहले स्थापित हो गया था। भारतीय इरानी समुद्री व्यापार अपने चरम पर था। इनमें से कुछ विदेशी व्यापारी श्रीलंका तथा मलाबार तट पर भी बस गए। कुछ अरब मुसलमान सिन्ध व गुजरात में भी आये पर इनका प्रभाव सीमित रहा। हालांकि बारहवीं सदी इसवी से इस्लामी संस्कृति का भारतीय समाज पर स्पष्ट प्रभाव

देखने को मिलता है। एच वी श्री निवास मूर्ति व एस.यू. कामत ने भारतीय समाज पर इस्लाम के धनात्मक तथा ऋणात्मक प्रभावों को रेखांकित किया है। उन्होंने लिखा कि अप्रत्यक्ष रूप से इस्लाम के कारण हिन्दू समाज जातिग्रस्त व एकांतिक होता चला गया। हिन्दू स्त्रियां परदे के पीछे चली गईं तथा सती प्रथा और सख्त हो गईं। बाल विवाह भी प्रचलन में आया।

2.6.2. हिंदू और मुस्लिम संस्कृति के संश्लेषण

सूफियों ने हिन्दी में लेखन कार्य प्रारंभ किया जिससे उर्दू के साथ-साथ हिन्दी साहित्य का भी विकास हुआ। फारसी संगीत के प्रभाव से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में ख्याल आदि नई गायन परंपराओं व घरानों की नींव पड़ी। तबला व सितार जैसे नए वाद्य यंत्र विकसित हुए। स्थापत्य कला में एक नई शैली उभरी जिसमें व्यापक अंतः क्षेत्र, बड़े गुंबद, मेहराब तथा मीनारें थीं। इस्लाम के किश्वरवाद का प्रभाव हिंदू समाज पर पड़ा मुख्यतः भक्ति आंदोलन के प्रमुख प्रणेता संत कबीर आदि पर। मुगल काल के दौरान भक्ति संप्रदाय का उदय एक अद्वितीय घटना थी। आंदोलन के प्रमुख नेता रहस्यवादी संत थे। उन्होंने एकेश्वरवाद पर बल दिया। सारभौमिकता, प्रेम व समानता ईश्वरीय गुणों के रूप में प्रसारित किए गए। महान मुगल शासक अकबर ने नए धर्म दीन-ए-इलाही से हिन्दू धर्म, जैन धर्म, इस्लाम तथा जोरास्त्रियन (पारसी) धर्मों के संश्लेषण का प्रयास किया। साहित्यिक शिखिसयत अमीर खुसरो ने हिन्दू धर्म को इस्लाम के साथ जोड़ने की कोशिश की। कई मुसलमान कवियों ने हिन्दी में रचना की तथा इस्लामी तथा हिन्दू संस्कृतियों के समन्वय पर जोर दिया।

2.7. ब्रिटिश काल में समाज

ऐसा अक्सर माना जाता है कि अंग्रेजों के भारत आगमन के समय भारत में समाज लगभग निष्क्रिय सा हो चुका था। अंग्रेजों को सलाह दी गई थी कि वे हिन्दुओं की सामाजिक प्रथाओं व धार्मिक मान्यताओं में हस्तक्षेप न करें। ब्रिटिश शासन काल के आरंभिक दौर में ग्रामीण भारत में जाति तथा वर्ग व्यवस्था जड़ तथा कठोर थी। व्यक्ति को परिवार, जाति व ग्राम पंचायत के अधीन माना जाता था। अर्थ व्यवस्था पुरातन पंथी हो चुकी थी व राष्ट्रीय चेतना का स्पष्ट आभाव था। ऐसे समय में अंग्रेजों के आगमन से एक नई स्थिति निर्मित हुई।

ब्रिटिश शासन तथा शिक्षा व्यवस्था ने भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला। ब्रिटिश सरकार ने स्वदेशी राज व्यवस्था व शासन प्रणाली का स्थान ग्रहण कर लिया। ब्रिटिश शिक्षाविदों ने शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर मूल निवासियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास किया। भारत में रह रहे ब्रिटिश समुदाय ने देश के विभिन्न भागों में रह रहे लोगों को प्रभावित किया। ब्रिटिश राज के आरंभिक दौर में बंदरगाह तथा तटीय क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित हुए। राष्ट्रीय चेतना का उदय, संगठन की शक्ति का एहसास तथा आंदोलनों के महत्व की समझ ने 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन का मार्ग प्रशस्त किया। इसलिए अक्सर ऐसा कहा जाता है कि ब्रिटिश शासन की प्रमुख उपलब्धि भारत का एकीकरण था। यह कार्य अंग्रेजों ने भारतीयों के हित में अनजाने में कर दिया। वे तो अपने राज्य को प्रसारित व सुदृढ़ करने में लगे हुए थे। यही तर्क पाश्चात्य शिक्षा, परिवहन के साधन, संचार, तकनीक व न्याय व्यवस्था के भारत में आगमन पर भी दिया जा सकता है।

योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारतीय (हिन्दू) परंपराओं का पश्चिम के साथ यह संपर्क एक विशिष्ट तथा मूलभूत समाजशास्त्रीय महत्व रखता है इतिहास की दृष्टि से ये संपर्क एक पूर्व आधुनिक व आधुनिकीकरण युक्त सांस्कृतिक व्यवस्था के बीच था। पाश्चात्य परंपरा का वैज्ञानिक तथा तकनीकी वैश्विक तर्कवाद, समानता व स्वतंत्रता पर आधारित था। इसके परिणामस्वरूप भारतीय परंपरा जो पहले से ही आंशिक रूप से भंग हो चुकी थी, और अधिक खुली, उदार, समतावादी तथा मानवतावादी होती चली गई। पश्चिम की

परंपराओं ने भारतीय लोकरीति के सामने कठिन चुनौती प्रस्तुत की। महन्तशाही, जन्म आधारित जाति व्यवस्था से सामाजिक स्थिति के निर्धारण की अवधारणा: साकल्यवाद, विभिन्न जाति समूहों के बीच संगठनात्मक परस्पर निर्भरता, जो कि समूहों में निर्दिष्ट कार्यों तथा कर्तव्यों के पालन संबंधित प्रतिमानों पर आधारित था, पश्चिमी परंपराओं से गहरे तौर पर प्रभावित हुए।

प्रारंभिक चरणों में पश्चिम का प्रभाव स्थानीय तथा परिधी तक सीमित रहा, जैसे इसका प्रभावक्षेत्र मुंबई, कोलकाता व चेन्नई नगर के मध्यवर्ग तक ही अधिक रहा। शिक्षण संस्थान भी इन्हीं तीन नगरों में केन्द्रित थे। अंग्रेजी शिक्षण का दोहरा प्रभाव हुआ :—

1. शिक्षिक लोगों के मन में पाश्चात्य मूल्यों तथा विचारधारा का प्रवेश।
2. सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलनों का उदय।

ब्रिटिश शासन ने मूल्यों के नए प्रतिमान गढ़े व इनके प्रति एक नई चेतना का विकास किया। वाय सिंह के अनुसार पश्चिमीकरण ने देश के आधुनिकीकरण में निम्नलिखित तरीके से अपना योगदान दिया :

1. सारभौमिक न्याय अधिरचना का विकास
2. शिक्षा का प्रसार
3. नगरीकरण तथा औद्योगिकरण
4. संचार तंत्र में वृद्धि
5. राष्ट्रवाद का विकास तथा समाज का राजनीतिकरण

2.7.1. नगरीकरण व औद्योगिकरण

भारत में नगरीकरण व औद्योगिकरण लगभग साथ में हुए हैं। कई अध्ययन इस बात कि पुष्टि करते हैं कि दोनों ही प्रक्रिया इस परंपरा को सुदृढ़ बनाते हैं। भारत में, नगरीकरण विकसित देशों की अपेक्षा एक मंथर गति की प्रक्रिया रही है। हालांकि नगरीय जनसंख्या में बीते कुछ वर्षों में बढ़ोतरी हुई है। शहर या नगरीय केन्द्रों में आधारभूत संरचना की सुविधाओं तथा अत्यंत कुशल कारीगरों की सघनता रही है। नगरीकरण में शहरों व कई क्षेत्रों में एकरूपता का अभाव रहा है और यही स्थिति औद्योगिकरण की भी रही। बहुत से संस्थागत कारणों से औद्योगिकरण की तीव्र गति में रुकावटें आईं। यद्यपि कई अध्ययनों से यह भी साबित हुआ कि जाति, संयुक्त परिवार तथा अन्य पारंपरिक मूल्यों से कारखानों व औद्योगिक संगठनों के सामाजिक संबंधों की स्वस्थ परंपराओं में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा है।

2.7.2 संचार तथा परिवहन के माध्यमों का प्रभाव

परिवहन व संचार के नए साधनों ने एक नए तरह के सामाजिक व सांस्कृतिक संपर्क का सूत्रपात किया है। सामाचार पत्र, सामयिकी व पत्रिका, मुख्यतः क्षेत्रीय व स्थानीय भाषाओं में, डाक सेवा, चलचित्र तथा रेडियो आदि ब्रिटिश लोगों द्वारा भारत में लाए गए। यही बात रेल, सड़क तथा वायुयान के लिए भी कही जा सकती है। इन नए उपकरणों ने जाति की संस्था, पवित्रता—अपवित्रत संबंधी धारणा तथा प्रवर्जन में रुकावटों को शिथिल किया। स्थानिक गतिशीलता निश्चित ही इन साधनों की एक महत्वपूर्ण सफलता थी।

अंग्रेजों के कारण भारत में एक राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना भी जागी। राजा राममोहन राय व महात्मा गांधी ने बहुत से मानवीय तत्व अंग्रेजी परंपराओं से लिए व उनका प्रयोग राष्ट्रीय चेतना जगाने में किया। पश्चिमी विचारकों से लिए गए संप्रदायवाद, धर्मनिरपेक्षवाद तथा राष्ट्रवाद के विचार बहुत लाभदायक साबित हुए।

2.8. स्वतंत्रोत्तर भारत

भारत में अपनी स्वतंत्रता लगातार अहिंसात्मक संघर्ष के जरिए प्राप्त की जिसमें महात्मा गांधी, बालगंगाधर तिलक, जवाहरलाल नेहरू व सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में हजारों लोगों ने अपना बलिदान दिया। भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ व हमने विकास तथा उन्नति के लिए लोकतांत्रिक साम्राज्यवाद का पथ चुना। भारत ने एक नया संविधान लागू किया जिसे 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया। भारतीय संविधान अपने सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता व न्याय आदि मौलिक मानवाधिकार प्रत्याभूति करता है। वो भारतीय समाज के प्रभावी वर्ग द्वारा भेदभाव तथा शोषण से सभी जनों की रक्षा करता है।

मौलिक अधिकारों के अलावा संविधान राज्य के नीति निर्धारण हेतु निर्देशों को भी रेखांकित करता है जिससे देश समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ सके व यहां सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन हो सके।

2.8.1. कानून के समक्ष समानता

आज भारत में कानून का राज है। सभी नागरिक समान हैं व प्राधिकार के अधिकार क्षेत्र के अधीन हैं। यहां तक कि भूतपूर्व राजकुमारों व सामंतों को दिए जाने वाला यहां तक कि भूतपूर्व राजकुमारों व सांतों को दिए जाने वाला शाही अनुदान भी साठ के दशक के उत्तरार्द्ध में समाप्त कर दिया गया। हैसियत व अधिकारों का आधार अब जन्म नहीं रहा है। धर्म, भाषा या जाति अब सामाजिक सम्मान या विशेषाधिकार दिलाने वाले कारक नहीं रह गए। हालांकि समाज के कमजोर वर्ग मुख्यतः अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के सदस्यों के सशक्तिकरण के लिए कुछ विशेष सुविधाएं तथा प्रावधान उपलब्ध कराए गए हैं। प्रबल वर्ग द्वारा भेदभाव तथा शोषण से उनकी रक्षा की जाती है। महिलाओं को पुरुषों के बराबर समानता है तथा सभी भारतीय नागरिकों को ग्राम, विधानसभा तथा केन्द्र स्तर पर मताधिकार प्राप्त है। हालांकि यह समानता का सिर्फ संवैधानिक पक्ष है। सामाजिक स्तर पर किसी भी समानता को प्राप्त करना बहुत ही दूर का लक्ष्य दिखाई देता है।

2.8.2. शिक्षा में विकास

शिक्षा के क्षेत्र में अत्याधिक विकास हुआ है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि निश्चित ही प्रभावी है। महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्रों की संख्या भी बढ़ी है। भारत में 195 से अधिक विश्वविद्यालय तथा राष्ट्रीय महत्व के संस्थान हैं। विद्यालयीन उच्चतर कक्षा, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर विविधिकरण का कार्य भी भारत सरकार कर रही है। प्राथमिक स्तर पर आधारभूत शिक्षा प्रदान की जा रही है। आज के दौर में उच्चतर कक्षाओं तथा विश्वविद्यालयीन स्तर पर जोर व्यावसायिक प्रशिक्षण पर हैं जैसे कम्प्यूटर विज्ञान, प्रायोगिक विज्ञान, प्रबंधन तथा अन्य प्रासंगिक तथा लाभकारी ज्ञान के क्षेत्र जो कि बेरोज़गारी की समस्या का समाधान कर सकें।

अभी तक हमने भारतीय समाज में पुरातन काल से आधुनिक समय तक आई सामाजिक-सांस्कृतिक गतिशीलता का विश्लेषण किया। भारतीय समाज के ऐतिहासिक विकास पर केन्द्रित इस विमर्श को हमने निरंतरता व परिवर्तन के उस स्वरूप को जानने की कोशिश की जिसे हम भारत में देख सकते हैं। पारंपरिक भारतीय समाज की चरित्रिक विशेषता श्रम विभाजन, सामाजिक जीवन में सद्गुण व मानव के गुणों व लक्ष्यों की पहचान थी। मुसलमान व अंग्रेज़ शासन के दौरान सदियों तक भारतीय संस्कृति अन्य कई संस्कृतियों से प्रभावित होती रही। इस प्रकार आज जो संस्कृति हम भारत में देखते हैं वह कोई एक लोक संस्कृति नहीं अपितु कई संस्कृतियों का मिला जुला स्वरूप है।

अपनी प्रगति परखे – 2

1. वाह सिंह के अनुसार बताए गए वे कौन से परिवर्तन थे जो पश्चिमीकरण के कारण आए व जिन्होंने भारत के आधुनिकीकरण में अपना योगदान दिया?

.....

.....

.....

.....

.....

2.9. भारत एक समाज के रूप में अर्थ तथा वैशिष्ट्य

भारत बाह्य तथा आंतरिक रूप दोनों से ही एक मिश्रित समाज है। यह अपनी बहुलता की विशेषता पर खरा उतरता है। विभिन्न जातियों व समुदायों की संस्कृति, धर्म, तथा भाषाओं का एक महासंघ मुगल व अंग्रेजी शासन तथा विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण के पश्चात भी अपनी एकता व संयोगशीलता बनाए रखने में सफल रहा है। स्पष्ट आर्थिक व सामाजिक असमानताओं के कारण समतावादी सामाजिक संबंधों के उद्भव में रुकावटों के बाद भी राष्ट्र की एकता व अखण्डता अक्षुण्ण रही है। इसी संश्लेषण ने भारत को संस्कृतियों की एक अद्वितीय संरचना में परिवर्तित कर दिया है। भारत ने ब्रिटिश राज के विरुद्ध एक संयुक्त इकाई के रूप में लड़ाई लड़ी। असल में भारत अपने प्रकार की एक अनोखी चित्रमाला है जिसके समान किसी अन्य महाद्वीप पर कोई देश नहीं है। विदेशी आक्रमणों, विश्व के विभिन्न भागों से प्रवर्जन तथा विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों तथा धर्मों की उपस्थिति ने एक तरफ तो भारतीय संस्कृति को सहिष्णु बनाया है, वहीं दूसरी तरफ इसे अपनी विशेषता व ऐतिहासिकता के साथ एक अनोखी निरंतरता युक्त व जीवित संस्कृति भी बनाया है।

हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई व इस्लाम यहां के प्रमुख धर्म हैं। 15 राष्ट्रीय भाषाओं के अलावा सैकड़ों बोलियां हैं। यहां पर बहुलता केवल जातीय संरचना, धार्मिक व भाषाई आधार के संदर्भ में नहीं अपितु जीवन के स्वरूपों, जीवन शैलियों, भूमि स्वामित्व व्यवस्था, व्यवसायिक लक्ष्य, विरासत तथा उत्तराधिकार कानून, जन्म, विवाह, मृत्यु आदि से जुड़े कर्मकाण्ड व प्रथाओं में भी देखने को मिलती है।

स्वतंत्रोत्तर भारत एक राष्ट्र के रूप में कई सारे मतभेदों व रुकावटों के बाद भी एक संयुक्त देश है। भारत की एकता की अवधारणा इसके ऐतिहासिक व सामाजिक सांस्कृतिक तथ्यों तथा इसकी सांस्कृतिक विरासत में अंतर्निहित है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। इसका एक संविधान है जो विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों, संस्कृति तथा भाषाओं के लोगों को प्रत्याभूती प्रदान करता है। यह सभी सामाजिक, आर्थिक वर्गों के लोगों को अपनी सीमा में आश्रय देता है।

2.9.1. स्थलाकृति व पर्यावरण

इंडिया नाम सिन्धु (इंडस) से लिया गया है जो कि उत्तर पश्चिम की एक बड़ी नदी है। पौराणिक व पारंपरिक हिन्दू साहित्य में इसे भरतखण्ड या कभी-कभी जंबूद्वीप भी कहा गया है जो कि पृथ्वी व स्थित सात सकिन्द्रिक द्वीपों में से एक है। भारत एक विशाल देश है जो कि उत्तर से दक्षिण तक 3,200 कि.मी. तथा पूर्व से पश्चिम तक 3,000 कि.मी. तक फैला हुआ है। इसका संपूर्ण क्षेत्रफल 32,80,483 वर्ग कि.मी.

है। अपने वैविध्यपूर्ण भौगोलिक स्वरूप के बाद भी भारत एक प्राकृतिक भौगोलिक इकाई की तरह दिखता है। भारत की भौगोलिक एकता पूरे देश में फैले धार्मिक केन्द्रों से और बढ़ जाती है। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई तथा अन्य धर्मावलम्बी अपने धार्मिक स्थलों के साथ पूरे देश में फैले हुए हैं। ये राजनैतिक गतिविधियों में साथ में सम्मिलित होते हैं। एकसमान प्रशासनिक व संवैधानिक ढांचा व देश का कानून भारत की राजनैतिक एकता बनाए रखते हैं।

2.9.2. आधुनिक भारत में संगठनकारी शक्तियां

एम.एन. श्रीनिवास लिखते हैं – “हिन्दू धर्म में एकता की अवधारणा अंतर्निहित है। हिन्दुओं की तीर्थयात्रा के पवित्र केन्द्र देश के हर कोने में मौजूद हैं। संस्कृत काल की संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष पूरे देश में देखने को मिलते हैं। भारत केवल हिन्दुओं के लिए ही नहीं सिखों, बौद्धों व जैनियों के लिए भी पवित्र भूमि है। ईसाईयों व मुसलमानों के भी कई पवित्र तीर्थ केन्द्र यहां पर हैं। एक संस्था के रूप में जाति कई धर्म समूहों के बीच उपस्थित है व एक समान समाजिक मुहावरा प्रदान करती है।”

श्रीनिवास आगे लिखते हैं कि भारत जो कि एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है, विविधता के प्रति सहिष्णु रखता है। हालांकि कोई भी श्रीनिवास की बात से असहमत हो सकता है सामान्यतः हिन्दू धर्म को लेकर व विशेषतः जाति व्यवस्था के बारे में। इन दोनों के रूढ़िवादियों ने भारत की एकता के लिए संकट पैदा किए हैं। इन दोनों का प्रयोग प्रायः कमजोरो विशेषकर वंचित समूहों और महिलाओं के दमन व शोषण के लिए किया जाता रहा है। सोचने का विषय यह है कि आज के तथाकथित आधुनिक भारतीय समाज में भी ‘जाति’ एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इसकी महत्ता दिनोदिन बढ़ती जा रही है।

2.9.3. आधुनिक भारत में विघटनकारी शक्तियां

संपन्न सांस्कृतिक विरासत, समतावादी नीतियां तथा कार्यक्रम व ‘कानून का राज’ होने के बाद भी संकुचित निष्ठा, संकीर्ण संबंधों व आदय स्वार्थों में, स्वतंत्रोत्तर भारत में वृद्धि हुई है। आज हम भारत के विभिन्न भागों में विघटनकारी शक्तियों को कार्य करते देख सकते हैं। भारत एक विरोधाभासों का देश है – एक और हम अत्यंत धनी, उच्च जाति तथा वर्ग के लोगों को देखते हैं दूसरी और बहुत गरीब, निम्न जाति व वर्ग के लोगों को भी पाते हैं। विभिन्न जाति, धर्म, क्षेत्र व भाषाई समूहों के लोग पूरे भारत में फैले हुए हैं।

धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रथा, व परंपराओं के आधार पर अल्पसंख्यक समूह उपस्थित हैं। बहुसंख्यक हिन्दू भी संप्रदायों, जातियों, वर्गों तथा भाषा समूहों में विभाजित हैं। इन समूहों का शिक्षा, व्यवसाय तथा जीवन स्तर के संदर्भ में अपने सदस्यों को लेकर एक निश्चित लक्ष्य रहता है। विभिन्न जाति व समुदायों के सभी सदस्यों को बराबर के अवसर प्राप्त नहीं होते या उन तक उनकी पहुंच नहीं होती है, इसलिए उन्हें वितरतात्मक न्याय नहीं मिल पाता है। ऐसी अवसरों की असमानता संबंधी स्थितियां, जिनके मूल में सामाजिक ढांचागत असमानताएं व्याप्त हैं, तनाव, परस्पर अविश्वास तथा निराशा को और बढ़ा देते हैं। सामाजिक संरचना के स्थल व सूक्ष्म रूप में परस्पर जुड़ाव की कमी एकता की अवधारणा तथा भारतीयता की भावना को गंभीर रूप से अवरुद्ध कर देती है। आदर्शों तथा यथार्थ के बीच की इस खाई को अविलंब पाटने की आवश्यकता है। परंतु यह खाई उत्तरोत्तर और गहरी होती जा रही है।

2.10 भारतीय ग्रामीण संदर्भ

भारत में गांवों की संख्या काफी अधिक है। इस कारण ही देश को ‘गांवों का देश’ कहा जाता है। भारत विश्व के क्षेत्रफल के 2.4 प्रतिशत भाग का अधिपति है परन्तु विश्व की 17.5 प्रतिशत जनसंख्या का आश्रय

स्थल है। 2001 के जनगणना आंकड़ों के अनुसार 72.2 प्रतिशत जनसंख्या 6,38,000 गांवों में बसती है और बची हुई 27.8 प्रतिशत जनसंख्या 5,100 नगरों तथा 380 नगरीय क्षेत्रों में रह रही है।

भारत के संदर्भ में यह कहना आवश्यक है कि चाहे नगरीय समुदाय हो, महानगरीय हो या ग्रामीण समुदाय हो, ये सभी वृहत्तर भारतीय सभ्यता के हिस्से हैं। सभ्यता में एकता के बावजूद ग्रामीण तथा नगरीय समुदायों में अंतर स्पष्ट है जिनका आधार प्राकृतिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण, जीवन शैली, जीवन मूल्य तथा प्रतिमान, तथा अन्य बहुत से कारक जैसे जनसंख्या घनत्व, जन्म तथा मृत्यु दर, आर्थिक गतिविधियां, निर्धनता, वर्ग तथा जाति, परिवार तथा धर्म है। ये कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक संगठन हैं, जो ग्रामीण समाज की विशेषताएं हैं तथा ग्रामीण और नगरीय समाज को अलग करते हैं। आगे हम भारतीय ग्रामीण समाज के सामाजिक व सांस्कृतिक पक्ष पर विमर्श करेंगे।

आज की ग्रामीण जीवनशैली के पीछे कई विशिष्ट ऐतिहासिक, प्राकृतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक घटक मौजूद हैं। आने वाले, भाग में हम भारतीय गाँवों के सामाजिक जीवन की विशेषताओं को चित्रित करने का प्रयास करेंगे। भारतीय ग्रामीण जीवन की समाजशास्त्रीय विशेषताएं निम्नलिखित निर्धारकों पर आश्रित हैं –

1. भौगोलिक पर्यावरण

- (i) स्थिति: भारतीय ग्रामीण प्राकृतिक परिवेश का अवलोकन करते समय, हम यह पाते हैं कि गाँव की भौगोलिक स्थिति, यदि घाटी या मैदानी क्षेत्र हो तो, आसानी से कृषि कार्य के लिए उपलब्ध रहती है। वहीं दूसरी तरफ यदि भौगोलिक परिस्थितियाँ दुर्गम हों तो न उद्योग लगते हैं न खेती हो पाती है।
- (ii) जलवायु : ग्रामीण जन मुख्यतः किसान होते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि उनकी आय का प्रमुख हिस्सा कृषि से आता है। गाँव का किसान खेती के लिए जलवायु पर अत्याधिक निर्भर होता है।
- (iii) स्थलाकृति: कृषक अपनी जमीन से बहुत अधिक जुड़े होते हैं। जमीन ही उन्हें जिविकोपार्जन में सहायता करती है। ऐतिहासिक रूप से भारतीय किसान की जमीन उसकी आशा व उसकी शोभा रही है।
- (iv) प्राकृतिक संसाधन: ग्रामीण जीवन सिंचाई व मछली पालन के लिए जल, वन तथा खनिज संपदा जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर अत्याधिक निर्भर होता है। ये संसाधन ग्रामीणों के जीवन को एक विशेष राह पर चलाने वाले संभावित कारक होते हैं।
- (v) पृथक्ता: ग्राम्य स्तर पर लोग तुलनात्मक रूप से पार्थक्य में जीते हैं। निवास का यह पार्थक्य ग्रामीण लोगों की संस्कृति व उनके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

2. सामाजिक पर्यावरण

- (i) प्राथमिक समूह में संपर्क की प्रबलता: प्राथमिक समूहों की प्रबलता ग्रामीण समुदाय के परस्पर मेलजोल में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यह जानना काफी रोचक है कि ग्रामीण भारत में व्यक्ति की पहचान उसके गाँव से होती है।
- (ii) सामाजिक विभेदीकरण: गाँवों में सामाजिक भेदभाव मुख्यतः जातिगत होता है। जाति के आधार पर ही गाँवों में निवास स्थान का निर्धारण किया जाता है। गाँव के सदस्यों के निवास उनकी जाति के आधार पर विभिन्न जगहों पर निर्धारित होते हैं। जातिगत मूल्यों को छोड़ना ग्रामीण परिवेश में बहुत कठिन होता है। महिला-पुरुष विभेदीकरण भी गाँवों में अपने चरम रूप में विद्यमान है।

- (iii) सामाजिक स्तरीकरण: ग्रामीण समाज में वर्ग या स्तरों की संख्या कम होती है। जमीन पर आधिपत्य थोड़े अंतर के साथ एक वर्ग या एक जाति में लगभग एक सा होता है। पारंपरिक रूप से ग्रामीण समाज में जाति की स्थिति ज्यादा जटिल रही है। अंतर्जातीय संबंधों में सामान्यतः परंपराओं से मार्गदर्शन लिया जाता है और इन्हें रोकने के लिए कई नियम, कायदे बनाए गए हैं।
- (iv) परिवर्तन तथा गतिशीलता: गतिशीलता की प्रवृत्ति व्यक्ति को अपने ही सामाजिक स्तर में या एक से दूसरे सामाजिक स्तर से परिचलित करने की होती है। ग्रामीण जन जिन्हें गतिहीन माना जाता था, अब नए व्यवसाय अपना रहे हैं। प्रवर्जन भी अब ग्रामीणों में आम बात है। कृषियोग्य भूमि की उपलब्धता में कमी व जमीन पर जनसंख्या का भार प्रवर्जन की गति को बढ़ा रहा है परंतु गाँव की सामाजिक संरचना में ऊपर की और गतिशीलता वंचित समूह और महिलाओं के लिए अभी भी पहुँच से बाहर है।

3. सांस्कृतिक पर्यावरण

- (i) सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में सादगी: गाँव का समाज रूढ़िवादी होता है। लोग कृषि संबंधी नियमित दिनचर्या से बंधे होते हैं। उनके लोक साहित्य, त्यौहार, मेले तथा लोक कथाओं से उनके कृषि कर्म की समानता होती है।
- (ii) सामाजिक नियंत्रण: ग्रामीण समाज में अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक नियंत्रण किया जाता है। आज भी ग्रामीण सामाजिक नियंत्रण प्रबल जातियाँ या गाँव के पंच करते हैं। इस सामाजिक नियंत्रण का स्वरूप कठोर और रूढ़िवादी होता है। यह अक्सर तथाकथित उच्च जातियों के पक्ष में होता है क्योंकि यह उन्हीं के द्वारा बनाया जाता है।
- (iii) ग्रामीण ज्ञान तथा कौशल: ग्रामीण समाज में आज के संदर्भ में यहां कृषिकार्य पूंजीवादी हो गया है, खेती के लिए बहुत अधिक प्रकार का ज्ञान व कौशल आवश्यक हो गया है, ऐसे में सफल किसान का हरफनमौला होना ज़रूरी हो गया है। कृषि गतिविधियाँ अब भी अधिकांशतः पारंपरिक ही हैं।
- (iv) जीवन स्तर व मापदंड: ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन का स्तर नीचे है। अधिकांश ग्रामीण जो गरीबी रेखा से नीचे हैं अमानक जीवन जीने को विवश हैं। जीवन स्तर व मापदंडों का सीधा संबंध कृषि तथा आय के स्रोतों से है परंतु जातिगत सामाजिक व्यवस्था भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

ग्रामीण और नगरीय जीवन के बीच निरंतरता या संबंधों के बाद भी इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि भौगोलिक जनसंख्या घनत्व तथा भौतिक सुविधाओं की दृष्टि से, ग्रामीण समुदाय जिस प्रकार के सामाजिक जीवन का प्रदर्शन करता है वह चारित्रिक रूप से राजनैतिक जीवन से भिन्न है। हमारे लिए यहां इस पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि ग्रामीण जीवन, जाति, वर्ग व राजनैतिक संरचना से किस प्रकार ग्रामीण सामाजिक परिवेश का निर्माण होता है, विशेषतः उपरोक्त तीन निर्धारकों के संदर्भ में।

2.10.1. जाति व्यवस्था

निश्चित ही भारतीय गाँवों के सामाजिक संगठन में जाति एक आधारभूत अवधारणा है। भारत में जाति व्यवस्था में विश्वास इतना दृढ़ है कि हर गाँव को जातियों का योग माना जा सकता है। जहाँ पारंपरिक रूप से हर जाति के लोग आमतौर पर आसपास रहते हैं व गाँव के एक निश्चित हिस्से में निवास करते हैं इससे उस स्थान का नाम जाति के नाम से संबद्ध हो जाता है। इसलिए भारतीय गाँव की कल्पना जाति के बिना असंभव है। भारत के लगभग सभी गाँवों में बिना अधिक अपवाद के समाज का चार जातियों में विभाजन, जिनमें ब्राम्हण तत्पश्चात क्षत्रीय, वैश्य और अंत में शूद्र, हमें देखने को मिलता है।

सभी समाजों में सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न प्रतिमान होते हैं। कुछ समाजों में यह वंश आधारित और अन्य में संपन्नता आधारित हो सकता है। मोटे तौर पर व्यक्ति की समाज में स्थिति दो प्रक्रियाओं पर निर्भर होती है। पहली है आरोपण की प्रक्रिया और दूसरी उपलब्धि की प्रक्रिया। Ascribed (प्रदत्त या आरोपित) वह सामाजिक स्थिति है जो किसी व्यक्ति को उसके विशिष्ट वर्ग में होने के कारण स्वतः प्राप्त हो जाती है। इसे पाने के लिए व्यक्ति को प्रयास नहीं करना पड़ता अपितु समाज द्वारा अपने आप ही यह है स्थिति व्यक्ति पर आरोपित कर दी जाती है। इसके विपरीत Achieved (उपलब्धि) आधारित हैसियत व्यक्ति को उसके प्रयासों तथा गुणों के कारण मिलती है। भारत में हम एक अलग प्रकार के सामाजिक स्तरीकरण का पहलू देखते हैं जिसे जाति कहा जाता है।

अंग्रेजी शब्द कास्ट (Caste) का उद्भाव स्पैनिश शब्द 'कास्टा' से हुआ है जिसका अर्थ नस्ल, प्रजाती या अनुवांशिक गुणों की एक शाखा या समूह से था। पुर्तगालियों ने विभिन्न वर्गों में विभाजित भारतीयों के लिए यह शब्द प्रयोग किया जो स्वयं अपने वर्ग विभाजन के लिए जाति शब्द का प्रयोग करते थे। अंग्रेजी शब्द 'कास्ट' मूल शब्द में थोड़े हेरफेर के साथ ले लिया गया। रिसली ने जाति (Caste) को वर्णित करते हुए लिखा है: एक परिवारों या परिवारों के समूहों का संग्रह जिनका समान उपनाम हो, अपनी उत्पत्ती एक समान पौराणिक चरित्र से मानते हो, चाहे वो मनुष्य हो या दैवीय चरित्र, जो एक ही वंश परंपरा को पालन करने का दावा करते हों तथा सक्षम व्यक्तियों द्वारा उन्हें एकरूप समुदाय होने का प्रमाणपत्र (मौखिक) प्राप्त हो।

केलकर कहते हैं, "जाति एक ऐसा समूह है जिसकी दो विशेषताएं होती हैं –

- (i) सदस्यता उन्हीं तक सीमित रहती है जो सदस्यों के वंशज जो और ऐसे सभी लोग जाति में शामिल होते हैं;
- (ii) समूह के बाहर के व्यक्ति के लिए सदस्यता कठोर सामाजिक नियमों के कारण निषिद्ध होती है।"

ग्रीन के अनुसार जाति 'स्तरीकरण का एक ऐसा तंत्र है जिसमें सामाजिक सोपान में उर्ध्वमुखी व अधोमुखी गतिशीलता, आदर्श रूप में तो संभव नहीं है।'

मेगस्थनीज़, तीसरी सदी ईसा पूर्व में भारत की यात्रा करने वाले ग्रीक नागरिक ने जाति की दो विशेषताएं बताई :-

- (i) अंतर्जातीय विवाहों का निषेध
- (ii) व्यवसाय बदलने की मनाही।

उपरोक्त परिभाषाएं जो कि विचारकों की राय पर आधारित हैं के आधार पर हम जाति व्यवस्था के कुछ प्रमुख लक्षण पहचान सकते हैं :-

(अ) यह समाज का अनुभागीय विभाजन है :- समाज को विभिन्न जातियों में बांटा जाता है तथा इनकी सदस्यता जन्म के आधार पर मिलती है। व्यक्ति की हैसियत उसकी संपत्ति पर नहीं अपितु उसकी जाति के पारंपरिक महत्व से होती है। जाति का चरित्र वंशानुगत है। किसी भी संपदा, तपस्या या पूजापाठ इस स्तर को नहीं बदल सकता।

(ब) सामाजिक व धार्मिक वंशानुक्रम :- जाति व्यवस्था की निश्चित सामाजिक प्राथमिकताएं होती हैं। हर जाति का एक नाम होता है जो उसे अन्य जातियों से भिन्न बनाता है। पूरा समाज विभिन्न जातियों में बँटा होता है जहाँ उच्च और निम्न स्तर की अवधारणाएं होती हैं। इसलिए ब्राम्हण भारत में सामाजिक सोपान के शीर्ष पर होते हैं। मनु के अनुसार ब्राम्हण इस सृष्टि का स्वामी है क्योंकि वह ब्रम्हा के सबसे पवित्र भाग अर्थात् मुंह से निकला है अपने ब्राम्हण कुल में जन्म मात्र से वह सभी विधानों का जीवित

सशरीर मूर्तरूप बन जाता है। आगे योद्धा वर्ग क्षत्रीय आते हैं और फिर वैश्य जो व्यापार तथा कृषि कार्य करते हैं तत्पश्चात् शूद्र जो सफाई के काम करते हैं। उच्च स्थिति प्राप्त ब्राह्मणों के उलट शूद्रों को बहुत सी विषमताओं का सामना करना पड़ता है। वे न तो जनमार्ग न ही जनकूप तथा मंदिर आदि में प्रवेश कर सकते हैं।

(स) भोजन तथा सामाजिक मेलजोल पर नियंत्रण :- जाति व्यवस्था ने भोजन तथा सामाजिक मेलजोल पर भी नियंत्रण बना रखा है तथा ब्यौरेवाद नियम बनाए गए हैं कि कोई व्यक्ति किस प्रकार का तथा किस जाति के व्यक्ति से भोजन ग्रहण कर सकता है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण पक्का भोजन अपर्थात् घी में पका हुआ, किसी भी समुदाय से ग्रहण कर सकता है पर कच्चा भोजन किसी अन्य जाति के हाथों से नहीं ले सकता। कुछ जातियों द्वारा छूने पर अपवित्र हो जाने की अवधारणा के कारण सामाजिक मेलजोल पर भी कई प्रकार के प्रतिबंध लगा दिए गए। इसलिए आपस में मिलते समय जातियां कितना फासला बनाए रखें इसे लेकर भी नियम बनाए गए।

(द) सजातीय विवाह :- एक जाति विशेष में जन्मा व्यक्ति जीवन भर उसी में रहता है वह मरता भी उसी में है। सभी जातियां उप जातियों में विभक्त है। सभी अपने सदस्यों को इससे बाहर विवाह करने की इजाजत नहीं देती है। इसलिए हर उपजाति सजातीय विवाह इकाई है। इस सिद्धांत का पालन इस कठोरता से होता है कि कुछ लोग इसे जातिप्रथा की आत्मा भी मानते हैं। सामान्य नियमों में कुछ अपवाद उच्च कुल में विवाह के संबंध में हैं। कोई उच्चकुल में विवाह करें तो अपवाद स्वीकार कर लिया जाता है अन्यथा उपजाति से भी बहिष्कृत कर दिया जाता है परंतु यह शिथिलता सिर्फ पुरुषों को प्राप्त है। महिलाओं के लिए यह पूर्णतः वर्जित है।

(ई) व्यावसायिक प्रतिबंध :- किसी भी जाति के लोगों से उनके जाति से जुड़े व्यवसाय में ही बने रहने की अपेक्षा की जाती है। उन्हें अपना काम छोड़कर कोई और काम करने की स्वतंत्रता नहीं होती। पैतृक व्यवसाय को छोड़ना बहुत अच्छा नहीं माना जाता। कोई भी जाति अपने सदस्य को कोई ऐसा काम नहीं करने देती जो कि तुच्छ समझा जाता है जैसे ताड़ी बनाना जो कि अपवित्र माना जाता है जैसे कचरा उठाना। यह केवल व्यवसाय से जुड़े नैतिक सिद्धांतों की ही बात नहीं है, अपितु एक जाति विशेष के लोग अपने से जुड़े व्यवसाय में दूसरी जाति के सदस्यों का प्रवेश भी होने नहीं देते। इसलिए ब्राह्मणों के अलावा पुरोहित कर्म में किसी और जाति के लोगों को नहीं पाया जाता है। यद्यपि ब्राह्मणों को कई प्रकार के दूसरे कार्य करते पाया गया। असल में देखा जाए तो यह सत्तासीन लोगों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए और वर्चस्व बनाए रखने के लिए बनाई गई संरचना है।

(फ) नागरिक तथा धार्मिक प्रतिबंध :- अधिकांशतः अपवित्र मानी जाने वाली जातियों को नगर से बाहरी क्षेत्र में रहने का स्थान दिया जाता था। दक्षिण भारत के नगरों तथा गांवों में कुछ स्थान ऐसे हैं जिनमें कुछ जाति विशेष के लोगों का प्रवेश प्रतिबंधित है। इतिहास से हमें यह ज्ञात होता है कि मराठा तथा पेशवा शासन काल के दौरान मेहर तथा मांग जाति के लोगों को पूना नगर के भीतर अपराह्न 3 बजे से 9 बजे तक प्रवेश की अनुमति नहीं थी क्योंकि उस समय परछाई का आकार दिन में सबसे बड़ा होता है तथा इनकी परछाइयों से कही उच्च जाति के लोग अपवित्र न हों जाए इसलिए इन पर प्रतिबंध लगाए थे।

जाति प्रथा हिंदू धर्म की रीढ़ की हड्डी है। हिंदू धर्म के आचार-विचार, नैतिक मूल्य, रीति-रिवाज, परंपराएं, जीवन-शैली, संस्कृति सभी कुछ जाति पर आधारित हैं। यह अपने आप में इतनी शक्तिशाली है कि यह जीवन के सभी पक्षों के कार्यपालन को निर्धारित करती है। यह भयावह रूप से शोषणकारी और दमनकारी है। इस प्रथा से समाज के कुछ लोग लाभान्वित होते हैं और अन्य शोषित। यह एक बंद समूह है जो व्यक्ति को अपनी जातिगत स्थिति कभी बदलने नहीं देता। इस प्रथा के कारण सदियों से समाज

का एक बड़ा समूह शोषण का शिकार हुआ है और आज भी हो रहा है। यह प्रथा मानवतावादी और समानतावादी मूल्यों के खिलाफ है। यही कारण है कि भारतीय (हिंदू) समाज अपने स्वरूप में कभी भी समानतावादी नहीं रहा। इस प्रथा के कारण एक ऐसे समाज का निर्माण हुआ जहाँ मनुष्य और उसकी परछाई तक को अपवित्र माना जाता है। एक ऐसा समाज जहाँ पेड़ों और जानवरों की पूजा की जाती है परंतु एक समूह के इंसानों को अपवित्र माना जाता है। जहाँ के नैतिक मूल्य सफाई के काम को अपवित्र ठहराते हैं और पूजा-पाठ को पवित्र। यह अपने आप में एक अत्याधिक संवेदनहीन और कठोर व्यवस्था हैं। यह प्रथा महिलाओं के लिए भी अमानवीय और शोषणकारी हैं। महिलाओं के मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रता का यह हनन करती है।

2.10.2. ग्रामीण भारत में परिवार

औपनिवेश काल में भारत के बारे में लिखते समय हैनरी मेन्स ने भारत की मुख्यतः दो सांस्कृतिक विशेषताओं का वर्णन किया – पहली जाति प्रथा दूसरी संयुक्त परिवार। संयुक्त परिवार मुख्यतः गांवों में देखने को मिलते हैं। इसे एक आदर्श अथवा एक अति महत्वपूर्ण मूल्य भी माना जाता रहा है जिसे कई परिवार प्राप्त करने का प्रयास करते रहते हैं। सर्वेक्षणों में यह पाया गया कि लोग बहुत सारे फायदों को ध्यान में रखते हुए संयुक्त परिवार में रहना अधिक पसंद करते हैं।

संयुक्त परिवार को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि ये नातेदारों का एक ऐसा कुल है जिनका निवास, रसोई, आय-व्यय तथा संपत्ति तथा धार्मिक उद्देश्य एक ही होते हैं। सामान्यतः संयुक्त परिवार का एक नाम होता है जो कि अधिकांश मामलों में परिवार की नींव डालने वाले सदस्य के नाम पर रखा जाता है। इनकी गहराई दो पीढ़ियों से अधिक होती है। संयुक्त परिवार में ऐसे दृश्य असामान्य नहीं होते जहां एक साथ चार पीढ़ियों के लोगों को रहते देखा जा सकता है। भारत में संयुक्त परिवार पितृवंशीय (अर्थात् वंश परंपरा पिता से पुत्र को हस्तांतरित होती है।) पितृस्थानिक (अर्थात् परिवार के पुरुष एक साथ रहते हैं पर स्त्रियों का विवाह होने पर उन्हें अपने पति के घर जाना पड़ता है।) तथा पितृसत्तात्मक (पुरुषों के पास अधिकारों का होना) है।

यद्यपि संयुक्त परिवार नगरीय क्षेत्रों से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को मिलते हैं (नगरों में एकल परिवारों की बहुलता है), हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि गाँवों की सभी जातियों में संयुक्त परिवार की परंपरा हैं। ऐसा पाया गया है तथाकथित उच्च जातियाँ जो कि भू-स्वामी होते हैं संपत्ति की रक्षा हेतु संयुक्त परिवारों में अधिक रहते हैं। वही तथाकथित निम्न जाति के लोग जो कि छोटे भूपति या भूमिविहीन होते हैं, एकल परिवारों में रहते हैं। निश्चित रूप से भूमि आधिपत्य का सीधा संबंध संयुक्त परिवार से है क्योंकि संपत्ति एक संगठनकारी बल की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अपनी प्रगति परखें – 3

1. भोजन व्यवहार पर जाति व्यवस्था के प्रतिबंधों पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी करें।

.....

.....

.....

2. क्या आपको लगता है कि आज के आधुनिक भारत में भी विभेदकारी कारक उपस्थित हैं। स्पष्ट करें।

.....

2.11 निष्कर्ष

‘भारत एक समाज के रूप में’ नामक इस इकाई का उद्देश्य आपको भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परिचय करवाना है। यह इकाई आपको भारत के राजनैतिक विकास यात्रा से लेकर भारतीय समाज के मूलभूत तत्वों के ऊपर जानकारी उपलब्ध कराती है। पहले खण्ड में हम भारत में चरणबद्ध तरीके से राष्ट्रवाद विकास देखते हैं। मोटे तौर पर कहें तो औपनिवेशिक प्राचीन काल में जनचेतना ने आकार लेना शुरू किया। औपनिवेशिक शासन ने पूरे राष्ट्र को एकीकृत करके आधुनिकीकरण तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारकों को भारत में स्थान दिया। कुल मिलाकर समाज में एक ऐसा परिवर्तन प्रारंभ हुआ जिसे पलटा नहीं जा सकता था। भारत के आर्थिक, राजनैतिक, व प्रशासनिक एकीकरण के लिए औपनिवेशिक शासन के तहत हमें बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो भारतीय राष्ट्रवाद, अंग्रेजी साम्राज्यवाद के तहत ही अपने आकर में आया। उभरते मध्यमवर्ग ने पाश्चात्य शैली की शिक्षा की सहायता से साम्राज्यवाद को उसी की जमीन पर चुनौती दी। विचित्र बात है कि उपनिवेशवाद व पाश्चात्य शिक्षण ने हमें अपनी परंपराओं के पुनर्अन्वेषण की प्रेरणा दी। इससे सामाजिक व आर्थिक मॉर्चे पर विकास हुआ जिसके कारण अप्रत्याशित रूप से राष्ट्रीय व क्षेत्रीय पटल पर सामुदायिक स्थिरता आयी।

इस इकाई में हमने भारतीय समाज के मूलभूत निर्माण के तत्व अर्थात् जाति तथा परिवार को भी जाना। भारतीय उपमहाद्वीप के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में जाति ने हमेशा ही अधिक शैक्षणिक ध्यान आकर्षित किया है। इसके परंपरागत स्वरूप, बदलाव और इससे होने वाली सामाजिक बुराईयों पर भी विमर्श किया गया। हमने परिवार को भी एक सामाजिक संस्था के रूप में जाना तथा इसकी विशेषताओं पर विमर्श किया।

2.12. आगे की मीमांसा के लिए कुछ प्रश्न –

- भारतीय समाज पर पाश्चात्य शिक्षा का क्या प्रभाव है? किस प्रकार, अच्छे व बुरे रूप में, विदेशी शिक्षा ने भारतीय समाज को प्रभावित किया।
- गत पचास वर्षों में परिवार में कैसे बदलाव आए है? इन बदलावों के निर्धारक कारक कौन से थे?
- किस प्रकार जाति व्यवस्था व्यावसायिक गतिशीलता को हतोत्साहित करती है? क्या आपको लगता है कि आधुनिक शिक्षा के मूल सिद्धांत जाति व्यवस्था के साथ सामंजस्य बैठा सकते हैं?
- ग्रामीण जीवन के भारत में कौन-2 से निर्धारक है? ये किस प्रकार ग्रामीण समुदायों को प्रभावित करते हैं?
- क्या औद्योगिकीकरण के बिना नगरीकरण संभव है? इन दोनों का आपस में क्या रिश्ता है?

2.13. ‘अपनी प्रगति परखें’ के उत्तर

1. वैदिक काल के समय महिलाओं का ज्ञान के सभी क्षेत्रों में प्रवेश संभव था तथा वे वैदिक, ऋचाओं की रचना भी करती थी। ज्ञान की ही तरह जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति थी। उपनिषद् काल में गार्गी तथा मैत्रेयी प्रमुख विचारक थी। उच्च जाति की महिलाएं अपने पति के साथ यज्ञ में सम्मिलित हुआ करती थी। उन्हें संपत्ति का अधिकार प्राप्त था तथा विधवा पुनर्विवाह की अनुमति थी। हालांकि बौद्धकाल में महिलाओं से वेद पाठ का अधिकार ले लिया गया। गुप्तकाल में

स्थिति में नाटकीय परिवर्तन आया। स्वयंवर तथा गंधर्व विवाह का चलन घटा व अर्श तथा असुर विवाह अधिक प्रसिद्ध होते चले गए। महिलाओं को संपत्ति के अधिकार से वंचित होना पड़ा व विधवाओं का पुनर्विवाह भी रोक दिया गया। दमनकारी सती व पर्दा प्रथा इसी समय उभरा।

2. वाय सिंह के अनुसार पश्चिमीकरण तथा आधुनिकीकरण के कारण आए बदलाव इस प्रकार हैं –

- सारभौमिक न्याय व्यवस्था का विकास
- शिक्षा का प्रसार
- नगरीकरण व औद्योगिकीकरण
- संचार के साधनों में अधिकता
- राष्ट्रवाद का विकास व समाज का राजनैतिककरण

3. जाति व्यवस्था ने भोजन व्यवहार तथा सामाजिक मेलजोल पर प्रतिबंध लगाए व किसी व्यक्ति के लिए किस प्रकार का भोजन व किस जाति के व्यक्ति के घर का भोजन वर्जित या स्वीकार्य है इस बारे में विस्तार से नियम बनाए गए। उदाहरणार्थ कोई ब्राम्हण घी में पका हुआ पक्का भोजन किसी भी जाति के व्यक्ति के यहां ग्रहण कर सकता है, परन्तु 'कच्चा' भोजन किसी अन्य जाति के व्यक्ति के घर नहीं खा सकता। कच्चे और पक्के भोजन का यह विभाजन तार्किक रूप से समझ से परे है। यह अत्यंत ही भेदभावपूर्ण व्यवस्था है जो कि न सिर्फ मनुष्यों में ऊँच-नीच को जन्म देती है वरन् भोजन को भी दो पवित्रता और अपवित्रता की धारणा में बाँट देती हैं।

4. भारत में संपन्न सांस्कृतिक विरासत, समतावादी नीतियों तथा कार्यक्रमों तथा कानून के शासन के बाद भी विघटनकारी शक्तियाँ सक्रिय हैं। भारत बड़े विरोधाभासों का देश है – यहां अत्याधिक धनी, उच्च जाति तथा वर्ग के लोग एक तरफ संसाधनों तथा प्रशासन में अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं वही दूसरी ओर बहुत गरीब, निम्न जाति तथा वर्ग के लोग मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में, बड़ी संख्या में देखे जा सकते हैं। यहां तक कि तथाकथित बहुसंख्यक समुदाय अर्थात् हिन्दू भी विभिन्न पंथों, जातियों, वर्गों तथा भाषाई समुदायों समुदायों में विभाजित हैं। इन समूहों के बेहतर शिक्षा, रोजगार तथा जीवन स्तर के संदर्भ में अपने सदस्यों के प्रति कुछ लक्ष्य हैं। विभिन्न जाति व समुदाय के सभी सदस्यों को एक से अवसर तथा उच्चपदों तक पहुंच प्राप्त नहीं हो पाती इसलिए इन्हे वितरतात्मक न्याय नहीं मिल पाता। जीवन में असमान अवसरों की ऐसी स्थिति जिसके मूल में सामाजिक ढांचागत असमानता है, कई बार तनाव, परस्पर अविश्वास तथा निराशा बढ़ा देते हैं।

2.14 संदर्भ तथा ग्रंथसूची

- एन.सी.ई.आर.टी. (2006) भारतीय समाज, कक्षा-12 की पाठ्यपुस्तक, नई दिल्ली।
- एन.सी.ई.आर.टी. (2006) सामाजिक बोध, कक्षा-11 की पाठ्यपुस्तक, नई दिल्ली।
- शर्मा, अमित कुमार, (2006) भारतीय संस्कृति का स्वरूप, कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
- घुरये, जीएस, 1969 'भारत में जाति तथा नस्ल/प्रजाति' पांचवा संस्करण, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई।
- ओबेरॉय, पैट्रीशिया, संपादित (1994), भारत में परिवार, नातेदारी तथा विवाह, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली।
- एन.सी.ई.आर.टी. (1987), भारतीय समाज कक्षा 12 के लिए पाठ्य पुस्तक, नई दिल्ली।

XXXXX